तिलक और बिन्दी

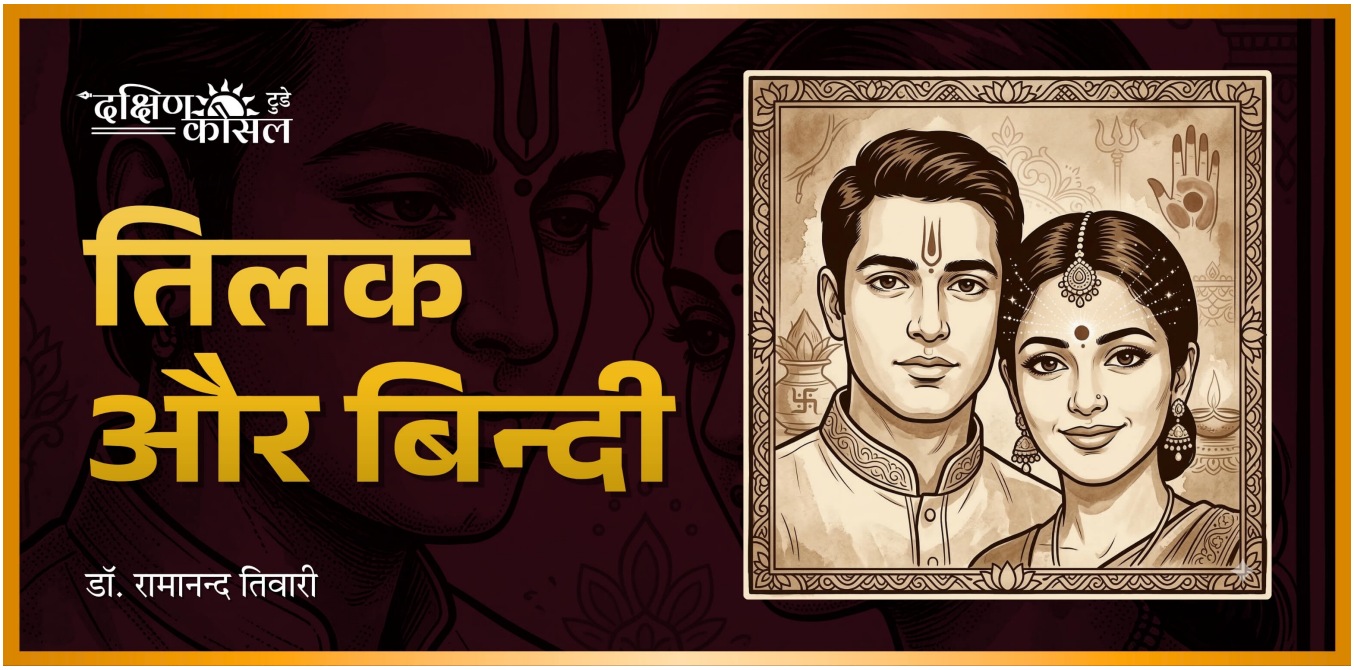

- लेखक : DAKSHIN KOSAL TODAY DESK
- तारीख : March 13, 2026

आज के आधुनिकता प्रधान युग में, जहाँ बाह्य चमक-धमक और पश्चिमी अनुकरण हमारी जड़ों को ओझल कर रहे हैं, 'दक्षिण कोसल टुडे' द्वारा एक प्रासंगिक लेख साझा किया जा रहा है जो "राष्ट्रीय पाक्षिक भारती" में डॉ. रामानंद तिवारी द्वारा लिखित है और 11 अगस्त 1957 के अंक से लिया गया है। यह लेख भारतीय परंपरा के आस्था से इतर वैज्ञानिक पक्ष को भी उजागर करता है।

प्रस्तुत लेख "तिलक और बिन्दी: भारतीय संस्कृति के मूर्धन्य अलंकार" शरीर के विज्ञान, मनोविज्ञान और आध्यात्मिक दर्शन का एक अद्भुत संगम है। लेखक ने अत्यंत सूक्ष्मता से इस तथ्य को रेखांकित किया है कि कैसे एक छोटा सा 'बिन्दु' हमारे मस्तिष्क की 'त्रिकुटी' पर स्थित होकर हमें हमारे सांस्कृतिक दायित्वों का स्मरण कराता रहता है। इस लेख में बिंदी अथवा तिलक के अलग-अलग पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है जैसे- कहीं इसकी साम्यता भगवान शिव के उस तृतीय नेत्र से है, जो 'काम-दहन' (वासनाओं के विनाश) और 'बोध' का प्रतीक है तो क हीं इसे एकाग्रता और ऊर्जा के संरक्षण की प्राचीन साधना पद्धति के रूप में देखा गया है एक ओर बिंदी नारी के सौभाग्य और अनुराग का लक्षण है तो दूसरी तिलक ओर पुरुष के तेज और ज्ञान का परिचायक है। यह लेख इस लुप्त होती परंपरा के प्रति पुरुषों को विशेष रूप से सचेत करता है।

सभ्यता की दौड़ में हम अपनी 'टीका' (व्याख्या) न खो दें। यदि मस्तक सूना है, तो वह केवल शारीरिक शून्यता नहीं, बल्कि हमारे संस्कारों की रिक्तता का भी संकेत है। यदि हम पुनः उस 'आदर्श' की ओर लौटें, जहाँ हम स्वयं को अपनी गौरवशाली परंपरा के आलोक में देख सकें तो इस लेख को साझा करने की सार्थकता सिद्ध होगी। आशा है कि यह लेख आपकी वैचारिक चेतना को झंकृत करेगा और नई पीढ़ी को अपनी जड़ों से जुड़ने की प्रेरणा देगा।

संपादक, दक्षिण कोसल टुडे

तिलक और बिन्दी भारतीय संस्कृति के मूर्धन्य अलंकार है। बिन्दी भारतीय नारियों के सौभाग्य का लक्षण है। कुमारी कन्याएँ भी प्रायः माथे पर बिन्दी लगाती है। इससे विदित होता है कि बिन्दी भारतीय नारीत्व के शील और सौभाग्य का सामान्य शृंगार है। नारी के शृंगार में जो बिन्दी का स्थान है वही स्थान पुरुष के उपकरणों में तिलक का है। स्त्रियों में शृंगार और संस्कृति की भावना अभी बहुत कुछ शेष है इसलिए उनके मस्तक की बिन्दी तो अभी अक्षुण्ण है, किन्तु अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के विस्मरण तथा पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण पुरुषों के मस्तक का तिलक विलीन होता जा रहा है। शास्त्र और संस्कृति की परम्परा में पुरुषों के लिए तिलक-धारण उतना ही आवश्यक है जितना कि स्त्रियों के लिए बिन्दी लगाना। स्त्रियों के सूने मस्तक की भाँति पुरुषों का सूना भाल भी संस्कारहीनता का लक्षण है। सीलिए पूजा, पर्व, व्रत, उत्सव, संस्कार आदि के अवसर पर पुरुषों के लिए विशेष रूप से तिलक-धारण का विधान है।

तिलक और बिन्दी भारतीय संस्कृति के अनर्थक उपचार-मात्र नहीं हैं। उनके रूप और गुणों में जीवन के कुछ महत्वपूर्ण रहस्य अन्तर्निहित हैं। भारतीय संस्कृति का बाह्य रूप देश के आर्थिक वैभव के कारण अलंकार-प्रधान था। मनुष्यों और देवताओं दोनों के ही वेष-भूषा आदि में यह अलंकार. का आधिक्य देखा जा सकता है। हमारे राजाओं की भूषा और सज्जा देवताओं के समान ही वैभवपूर्ण थी। स्त्रियाँ तो आज शिक्षा-सभ्यता के आधुनिक युग में भी किसी-न-किसी रूप में अलंकार और सज्जा की प्रेमी है। किन्तु आज पुरुषों के यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ ही दशक पूर्व पुरुष भी सुवर्ण और रत्नों के अलंकार धारण करते थे तथा रंगीन वेष-भूषा से सज्जित होना अनुचित नहीं मानते थे। भारत की अलंकार-प्रधान संस्कृति के दृष्टिकोण से तिलक और बिन्दी को सबसे पहले पुरुषों और स्त्रियों के अलंकार का ही अंग मानना उचित है। स्त्रियों का रूपसौन्दर्य तो इस एक बिन्दी से दशगुना ही नहीं अनगिन बढ़ जाता है। इसके लिए कविवर बिहारी का प्रसिद्ध प्रमाण है -

कहत सबै बंदी दिए, आंक दसगुनो होत।
तिय लिलार बंदी दिए, अनगिन होत उदोत।

स्त्रियों का ही नहीं पुरुषों का भी रूप तिलक से उसी प्रकार दीप्त हो उठता है जिस प्रकार प्रभात के सूर्य और संध्या के चन्द्रमा से आकाश का भाल उज्ज्वल हो उठता है। इसीलिए भगवान् भी अपने मस्तक पर कस्तूरी का तिलक लगाते हैं। किन्तु रूप का अलंकरण तिलक और बिन्दी का सम्पूर्ण प्रयोजन नहीं है। सांस्कृतिक होते हुए भी अलंकार एक ब्राह्य उपचार है। इस उपचार के अतिरिक्त तिलक और बिन्दी में अनेक आन्तरिक रहस्य अन्तनिहित हैं। इन रहस्यों का सूत्र हमें 'टीका' पद में मिलता है जिसका प्रयोग तिलक और बिन्दी दोनों के लिये सामान्य रूप से होता है। 'टीका' संस्कृति के साथ-साथ साहित्य में भी प्रचलित पद है। साहित्य में मूल रचना की व्याख्या को 'टीका' कहते हैं। 'टीका' का अभिप्राय मूल-रचना के साहित्यिक सौन्दर्य और अर्थ का उद्घाटन है। 'टीका' से उद्घाटित सौन्दर्य और अर्थ को बुद्धि में धारण किया जाता है। मस्तिष्क बुद्धि का आश्रय है। तिलक और बिन्दी भी मस्तक पर ही धारण किये जाते हैं। ऐसे सार्थक और सार-गर्भ पद का पर्याय होकर तिलक और बिन्दी का सांस्कृतिक रहस्यों से पूर्ण होना स्वाभाविक है।

तिलक और बिन्दी के इन सांस्कृतिक रहस्यों का सूत्र उनके वर्ग, आकार, स्थान, विधि आदि में सरलता से. मिल सकता है। सबसे पहले तिलक और बिन्दी के धारण का स्थान ही विचारणीय है। ये मस्तक पर और प्रायः दोनों भ्रुवाओं के सन्धि-स्थल के ऊपर धारण किये जाते हैं। ध्रुवाओं का यह सन्धिस्थल योग और तन्त्र में 'त्रिकुटी' कहलाता है और साधना की प्रणाली में ध्यान को केन्द्रित करने का बिन्दु माना जाता है। स्थान के निर्देश से प्रतीत होता है कि तिलक और बिन्दी के मस्तक पर धारण करने का यही अभिप्राय है कि जिन सांस्कृतिक तत्वों के ये प्रतीक हैं वे निरन्तर हमारे ध्यान में रखने योग्य हैं। शिरोवार्य और निरन्तर ध्यान का विषय बनकर ही ये तत्व जीवन में अन्वित हो सकते हैं।

तिलक और बिन्दी के धारण करने के इस त्रिकुटी केन्द्र का सम्बन्ध एक अत्यन्त प्राचीन धर्म-परम्परा से है। मोहन्जोदड़ो की खुदाई में प्राचीन सिन्धु-सभ्यता के जो अवशेष मिले हैं, उनमें शिव की मूर्तियाँ तथा उनके अन्य उपकरण उपलब्ध हुए है। पुरातत्व-वेत्ताओं का मत है कि सिन्धु की सभ्यता वैदिक सभ्यता से प्राचीन है। इसका निष्कर्ष यह है कि शैर्वधर्म और संस्कृति वैदिक संस्कृति से भी प्राचीन है। विष्णु, राम और कृष्ण के आकर्षक रूपों का प्रभुत्व देश में छा जाने पर भी गली-गली में शिव-मन्दिरों का होना शिव-धर्म की प्राचीनता और लोकप्रियता का प्रभाव ही प्रमाणित करता है। शिव का रूप अपूर्व और विचित्र है। उनके रूप की सभी विचित्रताओं में अद्भुत रहस्य अन्तर्निहित हैं। इन विचित्रताओं में. शिव का तृतीय नेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका सम्बन्ध शिव-चरित की एक विशेष महत्त्वपूर्ण घटना 'काम-दहन' से है।

शैवधर्म और संस्कृति की प्राचीनता से यहीं लक्षित होता है कि हमारी सांस्कृतिक परम्परा में तिलक और बिन्दी' धारण करने की प्रथा का आदिस्त्रोत शिव के तृतीय नेत्र के प्रतीक को प्रतिष्ठा देने की प्राचीन भावना में है। शिव का तृतीय नेत्र जीवन के एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण का प्रतीक हैं। नेत्र दर्शन की इन्द्रिय है। दृष्टि उसका गुण और धर्म है। प्राकृतिक दृष्टि से आलोक दर्शन का साधन है। सामान्यतः आलोक का वर्ग उज्ज्वल होता है। काव्य-परम्परा में भी दृष्टि का वर्ण उज्ज्वल मानते हैं। आलोक ज्ञान का प्रतीक है। सत्वगुण ज्ञान का आधार है। सत्व का वर्ग उज्ज्वल है। सत्व प्रकाशक भी है। इस प्रकार आलोक और दर्शन की इन्द्रिय होने के नाते नेत्र जीवन के ज्ञान और संस्कृति के दृष्टिकोण का प्रतीक है। शिव के तृतीय नेत्र के प्रतीक में जो सांस्कृतिक रहस्य अन्तानहित है वह शिव-चरित के आधार पर सरलता से समझा जा सकता है। शिव-चरित में तृतीय नेत्र का सम्बन्ध 'काम-दहन' से है। नेत्र ज्ञान के सांस्कृतिक दृष्टिकोण का प्रतीक है। ज्ञान का वर्णसत्व के अनुरूप उज्ज्वल है। शिव के तृतीय नेत्र में ज्ञान के आलोक के साथ तप के तेज का समन्वय है। तेज अग्नि का गुण है जो सामा न्यतः लाल होता है। क्रोध का वर्ग भी लाल है। शिव ने कामदेव के ऊपर क्रुद्ध होकर ही अपना तृतीय नेत्र खोला था। तृतीय नयन के तेज की ज्वाला से कामदेव का देह भस्स हो गया और तब से उसको अनंग का अभिधान मिला। शिव का काम दहन उनके ज्ञान की दीप्त प्रतिभा और उनके तप के तेज को ज्वाला का समन्वित प्रताप था। नेत्र की लालिमा और उज्ज्वलता में इन दोनों का संकेत है। उपनिषदों में गुरु और शिष्य अपने अधीत के तेजस्वी होने की कामना करते हैं।

के प्रतीक को प्रतिष्ठा देने की प्राचीन भावना में है। शिव का तृतीय नेत्र जीवन के एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण का प्रतीक हैं। नेत्र दर्शन की इन्द्रिय है। दृष्टि उसका गुण और धर्म है। प्राकृतिक दृष्टि से आलोक दर्शन का साधन है। सामान्यतः आलोक का वर्ग उज्ज्वल होता है। काव्य-परम्परा में भी दृष्टि का वर्ण उज्ज्वल मानते हैं। आलोक ज्ञान का प्रतीक है। सत्वगुण ज्ञान का आधार है। सत्व का वर्ग उज्ज्वल है। सत्व प्रकाशक भी है। इस प्रकार आलोक और दर्शन की इन्द्रिय होने के नाते नेत्र जीवन के ज्ञान और संस्कृति के दृष्टिकोण का प्रतीक है। शिव के तृतीय नेत्र के प्रतीक में जो सांस्कृतिक रहस्य अन्तानहित है वह शिव-चरित के आधार पर सरलता से समझा जा सकता है। शिव-चरित में तृतीय नेत्र का सम्बन्ध 'काम-दहन' से है। नेत्र ज्ञान के सांस्कृतिक दृष्टिकोण का प्रतीक है। ज्ञान का वर्णसत्व के अनुरूप उज्ज्वल है। शिव के तृतीय नेत्र में ज्ञान के आलोक के साथ तप के तेज का समन्वय है। तेज अग्नि का गुण है जो सामा न्यतः लाल होता है। क्रोध का वर्ग भी लाल है। शिव ने कामदेव के ऊपर क्रुद्ध होकर ही अपना तृतीय नेत्र खोला था। तृतीय नयन के तेज की ज्वाला से कामदेव का देह भस्स हो गया और तब से उसको अनंग का अभिधान मिला। शिव का काम दहन उनके ज्ञान की दीप्त प्रतिभा और उनके तप के तेज को ज्वाला का समन्वित प्रताप था। नेत्र की लालिमा और उज्ज्वलता में इन दोनों का संकेत है।

उपनिषदों में गुरु और शिष्य अपने ज्ञान और विद्या के तेज को ही ब्रह्मवर्चस कहा जाता था। गायत्री मंत्र में तेज के देवता 'सविता' के श्रेष्ठ तेज (वरेण्यं भर्गः) से हमारी बुद्धि (धीः) को प्रेरित करने की प्रार्थना की गयी है। तेज से दीप्त होकर ही ज्ञान जीवन और संस्कृति की शक्ति बनता है। शिव के तृतीय नेत्र का उन्मीलन तेजस्वी ज्ञान की सक्रियता का सूचक है। सक्रिय होकर ही यह ज्ञान संस्कृति के मार्ग निर्माण में सफल होता है। सांस्कृतिक विधियों के अवसर पर अक्षर-रोली से अंकित होने वाला तिलक ज्ञान (श्वेत) और तेज (लाल) की इस समन्वित दृष्टि का ही प्रतीक है। स्त्रियों के सौभाग्य-बिन्दु में केवल लालिमा ही रहती हैं। यह लालिमा क्रोध का नहीं अनुराग का लक्षण है। पार्वती ने तपस्या की थी। अतः तप का तेज भी स्त्रियों के लिए वज्जित नहीं है। शक्ति-तन्त्रों में शिव के समान त्रिनेत्रा देवी के रूप का भी वर्णन है। अतः ज्ञान और तेज की समन्वित दृष्टि का

प्रतीक तृतीय नेत्र स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए समान अर्थ का द्योतक है। सौभाग्य-बिन्दु की अरु-णिमा का आशय यही हो सकता है कि स्त्री के तप और तेज में भी अनुराग की ही शक्ति प्रधान है। लाल शक्ति का वर्ण है। इसीलिए देवी के उपासकों की सर्वांग-भूषा लाल होती है और दर्शकों को सिन्दूर का तिलक लगाया जाता है। पुरुषों की संस्कार-विधियों में अक्षत रोली के तिलक का रहस्य यही है कि जो स्त्री के लिए सहज अनुराग से साध्य हैं उसके लिए पुरुष को अक्षत सत्व से लक्षित अखण्डित ज्ञान का सहयोग अपेक्षित हैं। अस्तु, तिलक और बिन्दी के धारण की सांस्कृतिक परम्परा का मूल सम्बन्ध शैव धर्म के संस्कारों और शिव के तृतीय नयन से प्रतीत होता है। तिलक और बिन्दी के धारण का स्थान तथा उनमें लाल वर्ग की प्रधानता इस धारणा का समर्थन करती है। शिव के काम-दहनं की कथा तिलक और बिन्दी के सांस्कृतिक उद्देश्य को स्पष्ट बनाती हैं। त्रिनयन से लक्षित तप के तेज और ज्ञान की प्रतिभा से कामदेव के देह का दहन करके शिव ने पार्वती का वरण किया था। शिव का काम-दहन काम के संस्कार का प्रतीक है। शिव मंगल के प्रतीक हैं। काम जीवन की प्रमुख शक्ति है। गीता के अनुसार 'धर्मा-विरुद्ध होने पर वह भगवान् की विभूति बन जाता है। शुद्ध और संस्कृत होकर काम मानवीय संस्कृति की मंगलमयी भूमिका का निर्माण करता है। तिलक और बिन्दी शिव नेत्र के संकेत बनकर संस्कृति के मंगल-मार्ग के ध्रुवतारे हैं। कामदेव को सम्बोधित 'साकेत' की विरहिणी उर्मिला का यह वचन -

बल हो तो सिन्दूर बिन्दु यह
यह हर-तंत्र निहारो।

तथा 'पार्वती' महाकाव्य में बहन के पवित्र करों से भाई के मस्तक पर अंकित तिलक पर यह टीका -

पाथे पर अंकित तिलक तृतीय नयन-सा।
शंकर के, करता अविदित काम-दहन-सा॥

उपमा और कवि-कल्पना के द्वारा उक्त सत्य की ही व्यंजना है।

सामान्यतः तिलक एक गोल बिन्दु के आकार का होता है जो अक्ष-गोलक के समान है। प्रायः अंगुष्ठ के द्वारा त्रिकुटी से ऊपर की ओर लम्बे आकार का तिलक भी लगाया जाता है। वह भी आकृति में अक्ष के समान होता है। इसके अतिरिक्त सम्प्रदायों के अनुसार तिलकों के अनेक आकार हैं। इन आकारों का विधान उत्तर-काल में सम्प्रदायों के उदय के साथ ही हुआ होगा। इन साम्प्रदा-यिक तिलकों के विभिन्न आकारों में कुछ अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। इनमें शैवों का 'त्रिपुण्ड', वैष्णवों की 'श्री' आदि मुख्य हैं। यह स्पष्ट है कि त्रिपुण्ड प्राचीन शैवधर्म का लक्षण है। स्वयं शिव भस्म का त्रिपुण्ड धारण करते हैं। कुछ सम्प्रदायों में ऊर्ध्व-मुखी त्रिपुण्ड के अनुरूप आकार का तिलक लगाया जाता है। इसमें सम्प्रदाय का भेद भले ही हो किन्तु सिद्धान्त समान है।

शैवधर्म में त्रिपुण्ड धारण का अभिप्राय प्रकृति का उन्नयन और संस्कार है। त्रिपुण्ड की तीन रेखाएँ प्रकृति के तीन गुणों की प्रतीक हैं। प्रायः इन तीनों रेखाओं के छोर मिले रहते हैं क्योंकि प्रकृति के तीनों गुण एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। प्रकृति संस्कृति का भौतिक आधार है। उसके बिना साधना क्या जीवन भी संभव नहीं हो सकता। अतः वह शिरो-धार्य है। त्रिपुण्ड धारण इसी का सूचक है। किन्तु प्रकृति में रमण पशुओं का धर्म है। मनुष्यजीवन में प्रकृति के संस्कार और उत्न्न-यन की आवश्यकता है। मस्तक पर त्रिपुण्ड का धारण इस उन्नयन का सूचक है। प्रायः त्रिकुटी के स्थान पर इस त्रिपुण्ड की रेखाओं के मध्य में सन्धि-पर्व बनाये जाते हैं। ये सन्धि-पर्व मिलकर तृतीय नेत्र का ही संकेत करते हैं जो प्रकृति के उन्नयन और संस्कार का दिग्दर्शक है। ऊर्ध्व-मुखी त्रिपुण्ड के अनुरूप तिलकों में मध्य रेखा तृतीय नयन का ही संकेत करती है। श्री वैष्णवों में जो ऊर्ध्वगामी 'श्री' अंकित की जाती है वह भी स्थान और आकृति से तृतीय नयन का ही संकेत है। कुछ लोग त्रिपुण्ड की रेखाओं के मूल अथवा मध्य में अक्ष-गोलक के समान रोली का बिन्दु लगाते हैं। इस प्रकार तिलक और त्रिपुण्ड के प्रायः सभी रूप शिव के तृतीय नेत्र के द्वारा प्रकृति के संस्कार के सूचक हैं।

वर्ण की दृष्टि से रोली और केसर-युक्त चन्दन दो ही तिलकों में मुख्य है। रोली का लाल वर्ण शक्ति, तेज और अनुराग का सूचक है। भारतीय संस्कृति के दृष्टिकोण में ये तीनों ही शिरोधार्य हैं। शक्ति जीवन का आधार और संस्कृति का सम्बल है। तेज शक्ति की प्रतिमा है तथा प्रकृति के शोधन और अनीति के दलन का साधन है। अनुराग मुख्यतः समाज की श्रेयमयी व्यवस्था का सूत्र है। केसरिया वर्ण लाल के अत्यन्त निकट है। कदाचित् वह लाल और पीले का मिश्रण है। पीले रंग में सूर्य की किरणों का सबसे अधिक मिश्रण होता है। दोपहर की पीली खूप सूर्यकिरणों का सबसे अधिक मिश्रित रूप है। सूर्य की किरणें प्रकृति की शक्ति की प्रतीक है। इनका मिश्रण इस शक्ति के अनेक रूपों का समन्वय हैं। समन्वय और संस्कार के द्वारा ही प्रकृति संस्कृति का आधार बन सकती है। चन्दन के तिलकों में चन्दन के श्वेत वर्ण का आधार रहता है जो प्रकृति के संस्कार में सत्वगुण की मौलिकता का सूचक है। रोली के तिलक पर प्रायः अक्षत लगाये जाते हैं। वे भी जीवन के प्रेरक रजोगुण को सत्व के संस्कार की दिशा प्रदान करने के लिए हैं। सामान्यतः तिलकों में केसरिया और लाल वर्ण ही पाये जाते हैं। केसरिया पीत के समन्वय में अनुराग के सम्पुट का सूचक है। सत्व और रज का समन्वय ही मंगलमयी संस्कृति का मार्ग है। कस्तूरी का तिलक इसका सूचक है कि इस समन्वय में तम भी नितान्त उपेक्षित नहीं है।

स्त्रियों की बिन्दी में रोली के लाल वर्ण तथा सुवर्ण की ही प्रधानता पायी जाती है। लाल रंग की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है। सुवर्ण पीत के अनुरूप और कुछ लाल का पुट लिये हुए हैं। उसे केसरिया के समान ही माना जा सकता है। उसमें पीत के समन्वय में लाल के सम्पुट के साथ-साथ तेज की प्रतिभा है। दर्शनों में सुवर्ण का अन्तर्भाव तेज के अन्तर्गत माना जाता है। कांच तथा अन्य धातु-मिश्रणों से बनने वाली स्त्रियों की बिन्दियाँ प्रायः सुवर्ण अथवा लालवर्ण की होती है। उनका आकार भी प्रायः अक्ष के कृष्ण गोलक के समान गोल अथवा ऊर्ध्व नयन की आकृति के समान होता है। रोली के अतिरिक्त इंगुर सिन्दूर आदि की जो बिन्दियाँ प्रायः स्त्रियाँ लगाती हैं उनमें भी लाल और पीतवर्णों का मिश्रण रहता है। लाल की प्रधानता स्त्री की प्रकृति में अनुराग की प्रधानता सूचित करती है। प्रकृति के गुणों और तत्वों का समन्वेय मानों स्त्री को स्वभाव से सिद्ध है। इस समन्वय की भूमिका में स्त्री का सहज अनुराग प्रस्फुटित होता है। प्राकृतिक गुणों के समन्वय और संस्कार के सहज सिद्ध होने के कारण ही स्त्रियों के लिये त्रिपुण्ड धारण का विधान नहीं है।

अन्त में तिलक और बिन्दी के सम्बन्ध में दो बातें और विचारणीय हैं। एक तो यह कि तिलक एक ही लगाया जाता है। बिन्दी भी एक ही धारण की जाती है। शिव का तृतीय नेत्र भी एक ही है। इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ प्रकृति के रूपों के सम्यक् दर्शन के लिए दो नेत्रों की आवश्यकता है वहाँ सांस्कृतिक तत्वों के दर्शन के लिए एक ही दृष्टि अभीष्ट है। शिव का एक तृतीय नयन तथा एक तिलक और एक बिन्दी सी एक सांस्कृतिक दृष्टि के प्रतीक हैं। सांस्कृतिक मूल्यों के सम्बन्ध में भेद और द्विविधा के लिए स्थान नहीं है। दूसरी बात यह है कि ये तिलक और बिन्दी अपने हाथ से ही अपने मस्तक पर भी लगाये जाते हैं तथा हम इन्हें एक दूसरे के मस्तक पर भी लगाते हैं। इनके धारण की विधि व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी है। इसका तात्पर्य यही है कि व्यक्तिगत साधना और सामाजिक सहयोग सांस्कृतिक धारा के विकास के दो कूल हैं। स्त्री का सौभाग्य और पुरुष की पूजा व्यक्तिगत साधना के मार्ग हैं। इस साधना के क्षेत्र में वे दर्पण में देखकर स्वयं अपने माथे पर बिन्दी या तिलक लगाते हैं। दर्पण का नाम संस्कृत में 'आदर्श' है। सती और सज्जनों के आदर्श का अनुशीलन ही व्यक्ति गत साधना का मार्ग है। श्रृंगार और पूजा में अपने हाथ से अंकित बिन्दी और तिलक इसी के संकेत हैं। धार्मिक और सांस्कृ-तिक पर्वों के अवसर पर दूसरों के हाथ से तिलक का अंकित होना इस बात का सूचक है कि सांस्कृतिक विकास के लिए हमें अपने आचार्यों, गुरुजनों और बन्धुओं का सहयोग भी अपेक्षित है।

इन अनेक सांस्कृतिक रहस्यों सैं पूर्ण शिव के तृतीय नेत्र के प्रतीक तिलक और बिन्दी भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण के संकेत हैं। इस दृष्टिकोण को मस्तिष्क में धारण करके तथा जीवन में अन्वित करके ही तिलक और बिन्दी के धारण के उपचार को सार्थक बनाया जा सकता है।

लेख -
डॉ. रामानन्द तिवारी